नियोग प्रथा और आर्य समाज

— आर्य समाज के मत का तार्किक परीक्षण —



अब्दुल रहमान

नियोग प्रथा और आर्य समाज

—— आर्य समाज के मत का तार्किक परीक्षण ——

अब्दुल रहमान

सूची-पत्र

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
नहमदुहू व नुसल्ली अला रसूलिहिल करीम

दो शब्द पुस्तक के बारे में

यद्यपि नियोग विषय पर पूर्व में कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और इन पुस्तकों से पाठकों को बहुत लाभ भी हुआ है, फिर भी मैं लंबे समय से इस बात की आवश्यकता अनुभव कर रहा था कि इस विषय पर हिंदी भाषा में भी कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध हो, जिससे हिंदी-पाठक सरलता से इस विषय का अध्ययन कर सकें। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए हमने यह प्रयास किया कि पूर्व में लिखी गई उपयोगी पुस्तकों से लाभ उठाकर, उनके विषय-वस्तु का हिंदी रूपांतरण करते हुए, इस विषय को पुनः जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किया जाए, ताकि अधिक से अधिक लोग इससे लाभ उठा सकें।

इस पुस्तक के संकलन और लेखन में जिन पुस्तकों का सबसे अधिक योगदान रहा है, उनका उल्लेख करना मेरे लिए आवश्यक और कर्तव्य है। वास्तव में, उन पुस्तकों से सहायता लिए बिना इस पुस्तक को व्यवस्थित रूप से तैयार करना कठिन था। इनमें **शेख़ मुहम्मद यूसुफ़** की पुस्तक '**आर्य मज़हब की हक़ीक़त**' और **मुहम्मद साक़िब कानपुरी** की पुस्तक **'आर्य मज़हब का आईना'** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस पुस्तक में इन दोनों पुस्तकों के विषय-वस्तु और संदर्भों से पर्याप्त लाभ उठाया गया है।

इसी प्रकार, यह कहना भी आवश्यक समझता हूँ कि इस पुस्तक को तैयार करते समय यथासंभव सावधानी बरतने का प्रयास किया गया है। इसके बावजूद यदि इसमें कहीं कोई अशुद्धि, त्रुटि या भूल दिखाई दे, तो उसके लिए केवल **अब्दुल रहमान** की अपनी समझ की सीमा और दूरदर्शिता की कमी को उत्तरदायी समझा जाए; इसके लिए उन विद्वानों या सहयोगियों को दोषी न ठहराया जाए, जिनकी पुस्तकों और लेखों से इस पुस्तक को तैयार करने में सहायता ली गई है।

अब्दुल रहमान....

भूमिका

विवाह केवल सन्तानोंत्पत्ति का साधन नहीं, बल्कि पति-पत्नी के बीच विश्वास, निष्ठा, अधिकार और पारिवारिक मर्यादा का पवित्र बंधन है। ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि यदि संतान-प्राप्ति के लिए स्त्री या पुरूष को अपने पति या पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से संबंध स्थापित करने की अनुमति दी जाए, तो क्या यह विवाह की मूल भावना और पारिवारिक मर्यादा का गला घोटना नहीं होगा?

नियोग-प्रथा इसी प्रश्न से जुड़ा एक महत्वपूर्ण और विवादास्पद विषय है। आर्यसमाज के सिद्धांतों में, विशेषकर पंडित दयानंद सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश में, नियोग के संबंध में स्पष्ट नियम और परिस्थितियाँ वर्णित हैं। इस पुस्तक में उन्हीं विचारों और प्रमाणों का संक्षिप्त और तर्कपूर्ण परीक्षण प्रस्तुत किया गया है।

इस पुस्तक का उद्देश्य किसी व्यक्ति, समुदाय या संस्कृति की निंदा करना नहीं, बल्कि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह विचार करना है कि नियोग वास्तव में संतान-प्राप्ति की आवश्यक व्यवस्था है या ऐसी प्रथा, जो विवाह, दांपत्य-निष्ठा और पारिवारिक मर्यादा के मूल सिद्धान्तों से टकराती है।

अब्दुल रहमान....

नियोग प्रथा और मानवीय स्वाभिमान

पंडित दयानंद को यदि किसी विषय पर सबसे अधिक विवाद और आलोचना का सामना करना पड़ा है, तो वह नियोग का विषय है। पंडित दयानंद ने नियोग को संतान-प्राप्ति का एक वैकल्पिक उपाय बताया और तलाक तथा पुनर्विवाह के विकल्पों के संदर्भ में इसकी चर्चा की है। किंतु मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि आर्यों का आत्मसम्मान और लज्जा-बोध सत्यार्थप्रकाश के नियोग-प्रकरण को पढ़ते समय कहा चली जाती हैं? दयानंद द्वारा ऐसी अश्लील शिक्षा प्रस्तुत किए जाने पर उनके अनुयायियों की ओर से इसके विरोध में कोई गंभीर स्वर क्यों नहीं उठा?

क्या आज भी संसार में ऐसे स्वाभिमाहिन व्यक्ति मौजूद हैं, जो किसी भी उद्देश्य से अपनी पत्नी को किसी दूसरे पुरुष के साथ संबंध स्थापित करने की अनुमति देने के लिए तैयार हों? मेरे विचार में, शायद ही कोई व्यक्ति स्वेच्छा से ऐसा करने के लिए तैयार होगा। आज भले ही संसार में पहले जैसी मर्यादा, आत्मसम्मान और पारिवारिक प्रतिष्ठा की भावना शेष न रही हो, फिर भी अधिकांश मनुष्य ऐसे कृत्य को अपने आत्मसम्मान के प्रतिकूल ही समझेंगे।

और जैसा कि आप समझ रहे हैं, हाँ—मेरा संबोधन आर्यों की ओर ही है; क्योंकि नियोग-प्रथा उन्हीं के धार्मिक सिद्धांतों में एक विशेष स्थान रखती है। आर्य समाज में नियोग को लेकर विशेष आग्रह और गौरव की भावना दिखाई देती है। परंतु यह भी सत्य है कि सामान्यतः बहुत से लोग इस विषय की गहराई और इसके वास्तविकता से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। यदि वे इसके पूर्ण स्वरूप से परिचित हो जाएँ, तो निस्संदेह उनमें से बहुत-से लोग इस प्रथा से स्वयं को दूर रखना चाहेंगे और अपने आपको इस मत से क्षणभर के लिए भी जुड़ा रखना उचित नहीं समझेंगे।

अतः हमने आर्यों के इस प्रिय और महत्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डालना आवश्यक समझा है, ताकि जो लोग इसके वास्तविक स्वरूप से परिचित नहीं हैं, उनके सामने इसकी पूरी तस्वीर स्पष्ट हो सके और जिन्हें इसकी जानकारी नहीं है, वे भी इससे अवगत हो सकें।

नियोग से क्या अभिप्राय है?

नियोग का अर्थ है—स्त्री अपने पति के जीवित रहते अथवा उसकी मृत्यु के बाद, संतान-प्राप्ति के उद्देश्य से किसी अन्य पुरुष से समागम करे। इस संबंध में पंडित दयानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश[1] के चतुर्थसमुल्लास, पृष्ठ 101-102 पर इस प्रकार से विचार व्यक्त किया है —

1 आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली, 69वाँ संस्करण, अक्टूबर 2008.

नियोग किन-किन परिस्थितियों में आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है

1. जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिए गया है तो छः और धनादि कमाने के लिए गया है तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात नियोग करके संतानोत्पत्ति कर ले। जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे।
2. विवाह से आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे, संतान होकर मर जायें तो दशवे, जब-जब हो तब-तब कन्या ही होवे और पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्ष तक और जो स्त्री अप्रिय बोलने वाली हो तो तुरन्त उसको छोड़कर दूसरी स्त्री से नियोग करके संतानोत्पत्ति कर लेवे। वैसे ही जो पुरुष अत्यंत दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उसको छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर संतानोत्पत्ति करके, उसी विवाहित पति के दायभागी संतानोत्पत्ति कर लेवे।
3. जब पति संतानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री तू मुझ से दूसरे पति की इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से संतानोत्पत्ति की आशा मत कर। तब स्त्री दूसरे से नियोग कर के संतानोत्पत्ति करे, परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहै। वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर संतानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी! आप संतानोत्पत्ति की इच्छा मुझसे छोड़के किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके संतानोत्पत्ति कीजिये।
4. गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में दिर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके पुत्रोत्पत्ति कर दे..।

नियोग के संबंध में उपर्युक्त सिद्धांत हमने सत्यार्थप्रकाश से ज्यों-के-त्यों उध्दत किए हैं। अब इसपर क्रमबद्ध रूप से प्रकाश डालते हैं।

पति के परदेश जाने पर

पंडित दयानंद सरस्वती के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति धर्म, विद्या-प्राप्ति अथवा नौकरी के लिए विदेश या किसी दूर-दराज़ स्थान पर गया हो, तो उसकी स्त्री को निर्धारित अवधि तक प्रतीक्षा करने के बाद किसी अन्य पुरुष से नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कर लेनी चाहिए।

यदि आज के संदर्भ में भी देखा जाए, तो यह सामान्य सी बात है कि लोग शिक्षा, रोजगार अथवा अन्य आवश्यकताओं के कारण कई-कई वर्षों तक अपने घर-परिवार से दूर रहते है। ऐसी स्थिति में स्त्रियों को यह शिक्षा दी जानी चाहिए थी कि वे पति की अनुपस्थिति में धैर्य, संयम और दृढ़ता

के साथ अपने वैवाहिक जीवन की मर्यादा बनाए रखें। इसके विपरीत, उन्हें यह कहना कि पति की अनुपस्थिति में किसी पराए पुरुष से संबंध स्थापित करके संतान उत्पन्न करो—यह बात न केवल सामाजिक और पारिवारिक जीवन के संदर्भ में अस्वाभाविक है, बल्कि यह प्रश्न भी उठती है कि ऐसी शिक्षा में अच्छाई क्या है, इसे व्यवहार में कहा तक लाई जा सकती है और इसमें सार्वभौमिकता कितनी है?

इसके अतिरिक्त, सामान्य मानवीय स्वभाव भी सहज रूप से इस बात को स्वीकार नहीं करता कि कोई स्त्री अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से संबंध स्थापित करके संतान उत्पन्न करे और पति के लौटने पर वह उन बच्चों को देखकर प्रसन्न हो तथा उन्हें अपने ह्रदय की शांति और नेत्रों की शीतलता का कारण समझे।

एक स्वस्थ और स्वाभाविक वैवाहिक भावना रखने वाले पुरुष के लिए वह बच्चे कभी सच्चे सुख और नेत्रों की शीतलता का कारण नहीं बन सकते। बल्कि उल्टा, वे बच्चे उसके लिए ऐसे कांटे बन जाएँगे, जो निरंतर उसके ह्रदय को छलनी करते रहेंगे।

संतान न होने या संतान संबंधी समस्याओं पर

पंडित दयानंद का यह कथन कि यदि कोई स्त्री बाँझ हो तो आठ वर्ष तक संतान की प्रतीक्षा करने के बाद उसे छोड़कर किसी दूसरी स्त्री से नियोग द्वारा संतान उत्पन्न की जाए—एक अत्यंत कठोर, निर्दयी और अमानवीय शिक्षा है। यदि किसी स्त्री को संतान उत्पन्न करने में कठिनाई है, तो उसका चिकित्सीय उपचार (इलाज) कराने के स्थान पर उसे असहाय एवं बेसहारा छोड़ देना क्या उस नाजुक नारी का घोर अपमान और स्पष्ट अत्याचार नहीं है?

काश! पंडित जी ऐसी शिक्षा देने से पूर्व इस्लाम की उस शिक्षा पर भी दृष्टिपात करते, जिसने ऐसी परिस्थिति में स्त्री के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करने का निर्देश दिया है। इस्लामी शिक्षा के अनुसार, पुरुष यदि संतान कि इच्छा रखता है तो वह दूसरा विवाह कर सकता है; किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि पहली पत्नी के साथ अन्याय किया जाए। इस्लाम स्पष्ट करता है कि पहली पत्नी के अधिकारों, उसके सम्मान, उसके भरण-पोषण तथा उसकी सुख-सुविधाओं में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिए। दूसरी शादी का अर्थ यह कदापि नहीं है कि पहली पत्नी को बेसहारा और उपेक्षित छोड़ दिया जाए। यदि पुरुष उसके अधिकारों में कमी करता या उसके साथ अन्याय करता है, तो वह उसके लिए उत्तरदायी होगा—अर्थात् इस अन्याय का पूरा भार पुरुष पर होगा।

अब विचारिये कि इन दोनों शिक्षाओं में से किसने विश्व को सभ्यता, शिष्टता और मानवीय संवेदना का पाठ पढ़ाया?

इसी प्रकार, पंडित की यह शिक्षा भी चिंतनीय है कि यदि संतान उत्पन्न होकर मर जाए तो दसवें वर्ष तक, और यदि केवल पुत्रियाँ हो पुत्र न हो, तो ग्यारहवें वर्ष तक प्रतीक्षा करके उस स्त्री को छोड़कर दूसरी स्त्री के साथ नियोग कर पुत्र[2] उत्पन्न करे। मैं विवेक रखने वालों से पूछना चाहता हूँ कि क्या इस दिशा में भी स्त्री का कोई दोष है? विज्ञान स्पष्ट रूप से यह बताता है कि शिशु का लिंग पिता के शुक्राणु में उपस्थित X या Y गुणसूत्र पर निर्भर करता है—स्त्री का इस प्रक्रिया में कोई निर्णायक भूमिका नही होती। ऐसे में पूरा दोष स्त्री पर मढ़ कर उसे छोड़ देना नितांत अन्याय एवं क्रूरता है।

इसी प्रकार पंडित जी ने स्त्री की अप्रिय बोलने पर जो सीधा-साधा उपाय बताया है, उसपर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। यदि किसी स्त्री का स्वभाव चिड़चिड़ा है या वह कटु वचन बोलती है, तो क्या उसका समाधान यह है कि पुरुष किसी दूसरी स्त्री से नियोग करे? क्या इससे स्त्री की समस्या समाप्त हो जाएगी, या उसके मन में ईर्ष्या और पीड़ा और भी अधिक बढ़ जाएगी?

यदि पंडित ने इस्लामी शिक्षाओं का थोड़ा-सा भी ठीक प्रकार से अध्ययन किया होता, तो संभवतः ऐसी बुद्धिहीन बातें अपनी कलम से न निकालते।

पुरूष को चाहिए कि यदि उसकी पत्नी के स्वभाव में कठोरता या चिड़चिड़ापन हो, तो वह धैर्य, प्रेम, सहानभूति और सद्व्यवहार के माध्यम से उसके ह्रदय को जीतने का प्रयास करे। क्योंकि प्रेम और सहानभूति के सामने अनेक कठोरताएँ उसी प्रकार पिघल जाती हैं, जैसे सूर्य के सामने ओस की बूँदें। इसी संदर्भ में अल्लाह के रसूल मुहम्मद ﷺ से स्त्रियों के साथ नरमी का व्यवहार करने की शिक्षा वर्णित है और उनकी प्रकृति की तुलना सीने की पसली की हड्डी से करते हुए कठोरता से बचने की हिदायत दी गई है। आशय यह है कि वैवाहिक संबंधों में कठोरता के बजाए धैर्य, समझदारी और प्रेम का मार्ग अपनाया जाए।

अब इस शिक्षा की तुलना उस से कीजिए जिसमें पत्नी के स्वभाव की समस्या का समाधान किसी दूसरी स्त्री से नियोग करने में खोजा गया है। आप स्वयं विचार कीजिए—जिस उपाय को बीमारी

2 यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह संपूर्ण विधान केवल पुत्र-प्राप्ति के लिए है—इसमें पुत्री का कोई स्थान नहीं। और पूरे सत्यार्थप्रकाश में यह नहीं बताया गया कि यदि नियोग संबंध से केवल पुत्री ही उत्पन्न हो, तो उसकी जिम्मेदारी किसकी होगी?

का उपचार बनना चाहिए था, यदि वह बीमारी के कारणों को और बढ़ा दे, तो ऐसा उपचार ठीक वैसा ही है जैसे आग को बुझाने के लिए उस पर मिट्टी का तेल डालने को कहा जाए।

संतान के लिए नहीं, काम-वासना की पूर्ति के लिए भी नियोग

पंडित जी की इस शिक्षा से यह ज्ञात होता है कि नियोग केवल संतान-प्राप्ति के लिए ही उचित माना गया है और इसमें काम-वासना की पूर्ति का कोई स्थान नहीं है। पंडित जी ने कई स्थानों पर इस बात पर विशेष बल भी दिया है और उनके अनुयायी भी इसी बात को प्रमुखता से प्रस्तुत करते हैं। परंतु अफसोस कि इनकी स्मरण-शक्ति अत्यंत कमज़ोर है, क्योंकि अगले ही पृष्ठ पर पंडित ने स्वयं अपनी इस बात का खंडन कर दिया है। देखिए—

"गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिए पुत्रोत्पत्ति कर दे।"

इस निर्देश के बाद यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि संतान-प्राप्ति के अतिरिक्त काम-वासना तथा शारीरिक इच्छा की पूर्ति के लिए भी नियोग की अनुमति है। और इसका कोई ऐसा अर्थ या संतोषजनक उत्तर हमारे आर्य बंधु कभी नहीं दे सकते, जिससे यह स्पष्ट विरोधाभास समाप्त हो सके। क्योंकि यहाँ स्थिति यह है कि पुरुष की अपनी पत्नी पहले से गर्भवती है और वह स्वयं काम-वासना से भरा हुआ है, और यह स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में पुरुष किसी भी अन्य स्त्री से नियोग करेगा, तो वह संतान प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि केवल कामेच्छा की पूर्ति के लिए होगा।

एक और अन्य स्थान पर पंडित दयानंद जी कहते हैं—

"नहीं-नहीं क्योंकि जो स्त्री पुरूष ब्रह्मचर्य में स्थिर रहना चाहैं तो कोई उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये किसी अपने स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे, उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा; और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें।"[3]

इस कथन में विशेष रूप से यह वाक्य ध्यान देने योग्य है—"उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा।" इस कथन का सामान्य अर्थ तो यही प्रतीत होता है कि यदि विधवा या विधुर ब्रह्मचर्य का पालन करें और कुल की परम्परा बनाए रखने के लिए अपने स्वजाति के किसी बालक को गोद ले लें, तो उन्हें व्यभिचार की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

किंतु यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि यदि पंडित दयानंद के अनुसार नियोग व्यभिचार की श्रेणी में नहीं आता था, तो गोद लेने की स्थिति में व्यभिचार भी न होगा कहने की आवश्यकता

3 सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास, पृष्ट 96.

क्यों पड़ी? यह आशय स्पष्ट करता है कि पंडित दयानंद स्वयं भी विधवा-विधुर के नियोग को व्यभिचार के तुल्य ही मानते थे। यदि उनकी दृष्टि में नियोग व्यभिचार की क्षेणी में नहीं आता, तो ब्रह्मचर्य और दत्तक जैसी शर्त लगाने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

इससे भी महत्वपूर्ण इस कथन का अगला भाग है—"और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें"। इस कथन में नियोग और काम-सम्बन्ध को स्वीकार किया गया है, जो पंडित दयानंद और आर्यों के कथनों से मेल नहीं खाता यानी नियोग को केवल सन्तानोत्पत्ति तक सीमित बताना। अब प्रश्न यह है कि यदि नियोग में काम-तृप्ति का कोई स्थान नहीं और उसका एकमात्र उद्देश्य सन्तान प्राप्त करना है, तो गोद लिया हुआ पुत्र ही पर्याप्त क्यों नहीं माना गया? स्वयं इस कथन से पंडित जी पहले यह विकल्प प्रस्तुत करते हैं कि कुल की परम्परा बनाए रखने के लिए स्वजाति के किसी लड़के को गोद ले लें; और उसके बाद कहते है कि जो ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकें, वे नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करें।

इस पूरे कथन को सामने रखकर देखे तो नियोग की अनुमति न केवल संतान-प्राप्ति के लिए बल्कि काम-वासना या काम-तृप्ति की पूर्ति के उद्देश्य से भी दी गई है, परंतु शर्त केवल यह है कि उस स्त्री से केवल उतना ही समागम किया जाए, जितने से संतान-प्राप्ति हो जाए, इससे अधिक नहीं। यह कैद भी नहले-पे-दहला जैसा ही है (अस्तगफिरूल्लाह)।

विवाह और नियोग में भेद

पंडित दयानंद सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास के पृष्ट 96 पर विवाह और नियोग के बीच का अंतर बताते हुए लिखते हैं—

1. जैसे विवाह करने में कन्या अपने पिता का घर छोड़ पति के घर को प्राप्त होती है और पिता से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और विधवा स्त्री उसी विवाहित पति के घर में रहती है।

2. उसी विवाहिता स्त्री के लड़के उसी विवाहित पति के दायभागी होते हैं और विधवा स्त्री के लड़के वीर्यदाता के न पुत्र कहलाते न उस का गोत्र होता और न उस का स्वत्व उन लड़कों पर रहता किन्तु मृतपति के पुत्र बजते, उसी का गोत्र रहता और उसी के पदार्थों के दायभागी होकर उसी घर में रहते हैं।

3. विवाहित स्त्री-पुरुष को परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है। और नियुक्त स्त्री-पुरुष का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता।

4. विवाहित स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मरणपर्यन्त रहता और नियुक्त स्त्री-पुरुष का कार्य के पश्चात छूट जाता है।

5. विवाहित स्त्री-पुरुष आपस में गृह के कार्यों की सिद्धि करने में यत्न किया करते और नियुक्त स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर के काम किया करते हैं।

पंडित जी ने विवाह और नियोग में जो भेद बताया है, उसका सार यह है कि नियोगी पुरुष और नियोगन स्त्री के बीच कोई स्थायी संबंध नहीं होता। नियोगी पुरूष और नियोगन स्त्री एक-दूसरे के जीवन-सहचर या जीवन साथी नहीं बनते, न एक-दूसरे के सुख-दुख में सहभागी होते हैं और न ही एक-दूसरे के पारिवारिक जीवन में कोई स्थायी भूमिका निभाते हैं। उनका संबंध केवल नियोग के निर्धारित कार्य तक सीमित रहता है और उसके बाद वे अपने-अपने जीवन में लौट जाते हैं।

यह अत्यंत विचारणीय है कि क्या यह अधिक उचित है कि पुरुष और स्त्री का विवाह हो, और वे जीवन भर एक-दूसरे के दुख-दर्द में सहभागी तथा हितैषी बने रहें?

अथवा यह अधिक कल्याणकारी है कि वे केवल नियत समय मात्र के लिए—पशुओं की भाँति—संभोग करें, और तत्पश्चात् एक-दूसरे के लिए सर्वथा अपरिचित हो जाएँ?

यदि नियोग जैसी व्यवस्था में स्त्री-पुरुष का संबंध केवल सन्तानोत्पत्ति तक सीमित है, तो फिर विवाह का महत्व और आवश्यकता ही क्या रह जाती है? कोई पुरुष विवाह करके जीवन भर पत्नी के भरण-पोषण और गृहस्थी की जिम्मेदारी क्यों उठाए, यदि संतान प्राप्ति और काम-तृप्ति की पूर्ति के लिए विवाह के अतिरिक्त एक ऐसी व्यवस्था भी उपलब्ध हो जिसमें स्थायी वैवाहिक उत्तरदायित्व का कोई दायित्व न हो?

आर्यों से हमारा निवेदन है कि वे इस समस्या पर विचारें—यदि एक पुरुष और स्त्री केवल शारीरिक संबंध स्थापित करें और उसके बाद एक-दूसरे के लिए अपरिचित हो जाएँ, तो क्या ऐसी व्यवस्था परिवारिक जीवन को मजबूत करने वाली और समाज की उन्नति में सहायक हो सकती है?

हम पाठकों से भी यह विनती करते है कि वह स्वयं विचार करें—एक ओर, यह मान्यता है कि पुरुष और स्त्री विवाह बंधन में बँधकर आजीवन एक-दूसरे के सुख-दुख के साथी, और घनिष्ठ सहचर, हितैषी बनें। दूसरी ओर, ऐसी व्यवस्था है जिसमें दोनों केवल नियत उद्देश्य से संबंध स्थापित करते हैं, और कार्य समाप्त होते ही उसके बाद एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं।

बताइए-इन दोनों में से कौन-सा दृष्टिकोण अधिक स्वाभाविक, मानवीय और सामाजिक दृष्टि से उचित, उपयोगी और न्यायकारी है?

एक स्त्री को केवल संतान उत्पन्न करने वाले व्यक्ति की नहीं, बल्कि इसे जीवन-साथी की आवश्यकता होती है जो उसके सुख-दुख में उसके साथ खड़ा हो, कठिन परिस्थितियों में उसका सहारा बने और उसके जीवन की जिम्मेदारियों में सहभागी हो। इसी प्रकार, विवाह का मूल उद्देश्य भी केवल सन्तानोत्पत्ति नहीं, बल्कि पति-पत्नी का परस्पर सहयोग, स्नेह, सुरक्षा और जीवनपर्यंत साथ माना जाता है।

किंतु पंडित जी स्त्री-हित की सुनिश्चित करने के स्थान पर एक ऐसा "चोर दरवाज़ा" खोल रहे हैं, जिससे स्त्री केवल पुत्र-प्राप्ति और काम-तृप्ति का साधन मात्र रह जाती है।

प्रिय पाठकों! विशेषकर एक विधवा स्त्री के लिए ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जो संकट में उसका भरण-पोषण करें और जीवन की विपरीत परिस्थितियों में उसका सहारा बने। केवल संतान उत्पन्न कर देने वाला वीर्यदाता उसके जीवन की इन आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता।

आर्यों! ईश्वर के लिए बताओ-क्या पंडित दयानंद ने इसका कोई स्थायी व्यवस्था दिया है?

एक स्त्री को दस पुरुषों तक से नियोग की अनुमति

अब देखिए ऋग्वेदभाष्यभूमिक[4] में पंडित जी इस विषय में क्या कहते है—

"ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे इन्द्रपते! ऐश्वर्ययुक्त! तू इस स्त्री को वीर्यदान दे के सुपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर। हे वीर्यप्रद! पुरुष के प्रति वेद की यह आज्ञा है कि इस विवाहित वा नियोजित स्त्री में दश सन्तानपर्यन्त उत्पन्न कर, अधिक नही, तथा हे स्त्री! तू नियोग में ग्यारह पति तक कर। अर्थात एक तो उनमें प्रथम विवाहित और दश पर्यन्त नियोग के पति कर, अधिक नहीं। इस कि यह व्यवस्था है कि विवाहित पति के मरने वा रोगी होने से दूसरे पुरुष वा स्त्री के साथ सन्तानों के अभाव में नियोग करे। तथा दूसरे के भी मरण वा रोगी होने के अनन्तर तीसरे के साथ कर ले। इसी प्रकार दसवें तक करने की आज्ञा है। परंतु एक काल में एक ही वीर्यदाता पति रहे। दूसरा नहीं। इसी प्रकार पुरुष के लिये भी विवाहित स्त्री के मर जाने पर विधवा के साथ नियोग करने की आज्ञा है। और जब वह भी रोगी हो वा मर जाय तो सन्तानोत्पत्ति के लिये दशमस्त्रीपर्यन्त नियोग कर लेवे।"[5]

4 आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली, 10वाँ संस्करण, जून 2010.
5 ऋग्वेदभाष्यभूमिक, नियोगविषयः, पृष्ट 176.

नियोग की परिस्थितियों में एक परिस्थिति यह भी बताई गई है कि जब पुरुष का वीर्य किसी रोग के कारण सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ हो जाए; जैसे—वीर्य का पतला होना, उसमें शुक्राणुओं का अभाव, उनकी संख्या का बहुत कम होना अथवा उनमें कोई विकार होना। ऐसी दशा में पुरुष संतान उत्पन्न करने में अयोग्य हो जाता है और तब नियोग करना अनिवार्य होगा।

संसार मे अधिकतर यही स्थिति पाई जाती है, क्योंकि अन्य स्थितियाँ—जैसे हिजड़ा होना या बंध्याकरण (खस्सी) किया जाना—बहुत कम पाई जाती हैं। विवाह के समय भी लोग पूरी सावधानी एवं जाँच-पड़ताल के बाद ही अपनी पुत्रियों का विवाह करते हैं। हिजड़ा या नसबंदी-कृत पुरुषों को कोई कन्या नहीं देता। इसलिए यह मानना कठिन होगा कि अधिकांश मामलों में समस्या इन्हीं असाधारण परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होती होगी।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के अनुसार, ऐसे पुरुष भी संतानोत्पत्ति में अयोग्य माने जाते हैं, जो देखने में कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, परंतु जिनके वीर्य में शुक्राणु नहीं होते। कभी-कभी वीर्य तो सामान्य प्रतीत होता है और पुरुष भी युवा होता है, किंतु शुक्राणुओं की संख्या सामान्य से कम होती है, अथवा वे इतने दुर्बल होते हैं कि जीवित नहीं रह पाते। ऐसा पुरुष उस स्त्री (बाँझ) के समान होता है जो संतान उत्पन्न करने में असमर्थ हो—उसके प्रजनन-अंग पूर्णतः स्वस्थ होते हैं, और उसकी काम-शक्ति भी अधिक होती है, फिर भी संतान उत्पन्न नहीं होती। इन सब स्थितियों में वीर्य के शुक्राणुओं में कोई न कोई दोष अवश्य होता है—या तो वे उत्पन्न ही नहीं होते, अथवा इतने कमज़ोर होते हैं कि उनके शुक्राणु जीवित नहीं रह पाते।

ऐसे पुरुष संसार में लाखों की संख्या में हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ लोग गंभीर रोगों, उपदंश अथवा वीर्य-विकारों के कारण भी संतानोत्पत्ति में असमर्थ हो जाते हैं। ये स्थितियाँ संसार में बहुतायत से मिलती हैं। परंतु इन लोगों की कामेच्छा में कोई कमी नहीं होती; वास्तव में कुछ लोगों में तो यह सामान्य से भी अधिक होती है। चिकित्सकों के अनुसार ऐसे पुरुष केवल संतानोत्पत्ति में अक्षम माने जाते हैं।

यह भी याद रखें कि नियोग केवल युवा स्त्रियों के साथ ही किया जा सकता हैं, क्योंकि वृद्धावस्था में स्त्री स्वयं संतानोत्पत्ति में असमर्थ हो जाती है। अब यदि किसी युवा स्त्री का नियोग कराया जाए, और उसका पति भी युवा हो, उसमें पूर्ण यौन-क्षमता हो—यहाँ तक कि वह वीर्यदाता से भी अधिक समर्थ हो—तो ऐसी स्थिति में लज्जा और बेशर्मी की बात तो अलग, परंतु ईर्ष्या की भावना अत्यंत प्रबल हो सकती है। यह कल्पना भी कठिन है कि पति रातभर कामेच्छा से तड़पता रहे,

और उसकी युवा एवं सुंदर पत्नी किसी अन्य पुरुष के निचे अपना मुँह काला करें—और वह केवल धैर्य धरकर देखता रहे तथा उसकी आहें सुनता रहे।

मेरा स्पष्ट मानना है कि यदि वह पुरुष अपनी बेशर्मी और निर्लज्जता के कारण नियोग को रोकने से बच भी ले, किंतु कामेच्छा और ईर्ष्या के कारण वह उस वीर्यदाता को जूते मारकर बाहर निकाल देगा और स्वयं अपनी पत्नी के साथ संभोग करेगा।

अब इस व्यवस्था की एक और बेशर्मी और निर्लज्जता की परिकाष्ठा देखिए कि यहाँ केवल एक वीर्यदाता कि बात नहीं कही गई, बल्कि दस नियोग-पुरुषों तक कि अनुमति दी गई है। अर्थात यदि पहले वीर्यदाता में किसी प्रकार का रोग या असमर्थता पाई जाए, तो दूसरे पुरुष के साथ नियोग करें, फिर तीसरे के साथ और इसी क्रम से दसवें तक नियोग करने की व्यवस्था बताई गई है[6]। यही व्यवस्था पुरुषों के लिए भी बताई गई है।

इसी प्रकार एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या एक या दो संतान पर्याप्त नहीं थीं? क्या एक या दो पुत्र संतान नहीं कहलाते? फिर दस संतान की सीमा क्यों निर्धारित की गई? यदि नियोग का मूल उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति ही हैं, तो दस-दस पुत्रों की शर्त क्यों? और फिर दस तक कि ही सिमा क्यों उससे अधिक क्यों नहीं? क्या कोई आर्यविद्वान इसका संतोषजनक उत्तर दे सकता है?

अंततः मैं कहना चाहूँगा कि नियोग एक अत्यंत लज्जास्पद, शर्मनाक और सभ्यता-विरुद्ध प्रथा है। इसके द्वारा जन्मे व्यक्ति को 'नियोग की संतान' कहना ऐसा ही है, जितना किसी को 'हरामी' कहना।

———— ✦ ❖ ✦ ————

6 बेचारा विवाहित पति।